बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 238

प्रायोगिक मामला

भारतीय रिजर्व बैंक (आरबीआई) ने संकट में घिरी गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनी दीवान हाउसिंग फाइनैंस कॉर्पोरेशन (डीएचएफएल) का बोर्ड भंग करने के साथ ही एक सेवानिवृत्त बैंकर को कंपनी का प्रशासक नियुक्त किया है। यह कदम डीएचएफएल को कर्ज समाधान एवं दिवालिया संहिता (आईबीसी) के तहत भेजने की दिशा में उठाया गया है। राष्ट्रीय कंपनी कानून पंचाट (एनसीएलटी) को इस मामले में समाधान पेशेवर के तौर पर एक प्रशासक नियुक्त करना होगा। डीएचएफएल एक प्रायोगिक मामला होगा क्योंकि यह व्यवस्थागत रूप से अहम वित्तीय कंपनी को नए नियमों के तहत दिवालिया प्रक्रिया में भेजने का पहला मामला है। ये नियम 500 करोड़ रुपये से अधिक परिसंपत्ति वाली एनबीएफसी के लिए हाल ही में बनाए गए हैं। मामले में पेश नजीरें एनबीएफसी क्षेत्र में व्यापक तौर पर लागू होंगी। यह क्षेत्र आईएलऐंडएफएस के ध्वस्त होने के बाद से ही भारी दबाव में है। उसकी तुलना में कम जटिल होने के बावजूद डीएचएफएल पर करीब 90,000 करोड़ रुपये की देनदारी है और इसका आवासीय एवं रियल एस्टेट पर व्यापक प्रभाव होगा। कंपनी को करीब 40,000 करोड़ रुपये का भुगतान बैंकों को करना है और 10 फीसदी से भी कम हिस्सा सार्वजनिक जमाकर्ताओं का है।

यूं तो डीएचएफएल जून से ही मुश्किलों में घिरी हुई है लेकिन उसे इस हालत में आने में समय लगा है। पहली वजह यह है कि एक वित्तीय संस्थान होने से इसके कारोबार समेटने को लेकर कोई अलग कानून नहीं है। मौजूदा आईबीसी नियमों ने इस बारे में कुछ प्रावधान किए हैं लेकिन उनकी मजबूती परखनी होगी। दूसरी समस्या यह है कि एक वित्तीय कंपनी होने से इसके लेनदारों की संख्या बहुत है। न केवल बैंक बल्कि म्युचुअल फंड, बॉन्डधारक और खुदरा सावधि जमाकर्ता भी इसके लेनदार हैं। लेकिन इन ऋणदाताओं के अलग-अलग हित होने से तमाम लेनदारों के बीच समझौता हो पाना आसान नहीं होगा। सवाल यह है कि क्या कर्ज समाधान प्रक्रिया इन प्राथमिकताओं के बीच संतुलन साध पाएगी? आखिरी समस्या यह थी कि डीएचएफएल के खिलाफ धोखाधड़ी के एक मामले में जांच भी चल रही है। इस जांच की प्रगति ही यह तय करेगी कि लेनदार डीएचएफएल से अपने कर्ज की वसूली कैसे करना चाहेंगे? कंपनी खातों की ऑडिट रिपोर्ट में ऐसा अंदेशा जताया गया था कि फंड को डीएचएफएल के प्रवर्तकों से जुड़े खातों में भेज दिया गया। उस समय लेनदार यही जानना चाह रहे थे कि क्या प्रवर्तकों के खातों में भेजी गई रकम वसूली जा सकती है। आखिर में, इस संकटग्रस्त वित्तीय कंपनी को नए सिरे से खड़ा करने के लिए कई योजनाएं पेश की गई हैं। इनमें से अधिकांश पर सहमति बन पाने या सफल हो पाने की संभावना कम ही है।

आईबीसी को इनका हल निकालना होगा। यह भी देखना होगा कि डीएचएफएल जैसी वित्तीय कंपनी के कर्ज निपटान के लिए आईबीसी प्रक्रिया अपनाकर नजीर भी पेश की जा रही है। एनबीएफसी की व्यवस्थागत अहमियत और डीएचएफएल से जुड़ी कई परियोजनाओं के अपने दम पर भी व्यवहार्य होने की बात भी ध्यान में रखनी होगी। सर्वोच्च न्यायालय ने हाल ही में कहा है कि आईबीसी को लेनदारों की अहमियत का भी सम्मान करना होगा यानी सुरक्षित ऋणदाता को असुरक्षित लेनदार की तुलना में अहमियत देनी होगी।

भले ही आरबीआई जमाकर्ताओं की राशि का भुगतान पहले होते हुए देखना चाहेगा लेकिन सच यही है कि आईबीसी प्रक्रिया में सुरक्षित ऋणदाता को प्राथमिकता देनी होगी। अगर डीएचएफएल का यह प्रायोगिक मामला समस्याओं में घिर जाता है तो सरकार को जल्दबाजी दिखाते हुए दिवालिया वित्तीय संस्थानों से संबंधित अपने विधेयक का संशोधित संस्करण लाना होगा। इस विधेयक को पिछले साल सरकार ने वापस ले लिया था जब जमा सुरक्षा को लेकर चिंता जताई जाने लगीं।

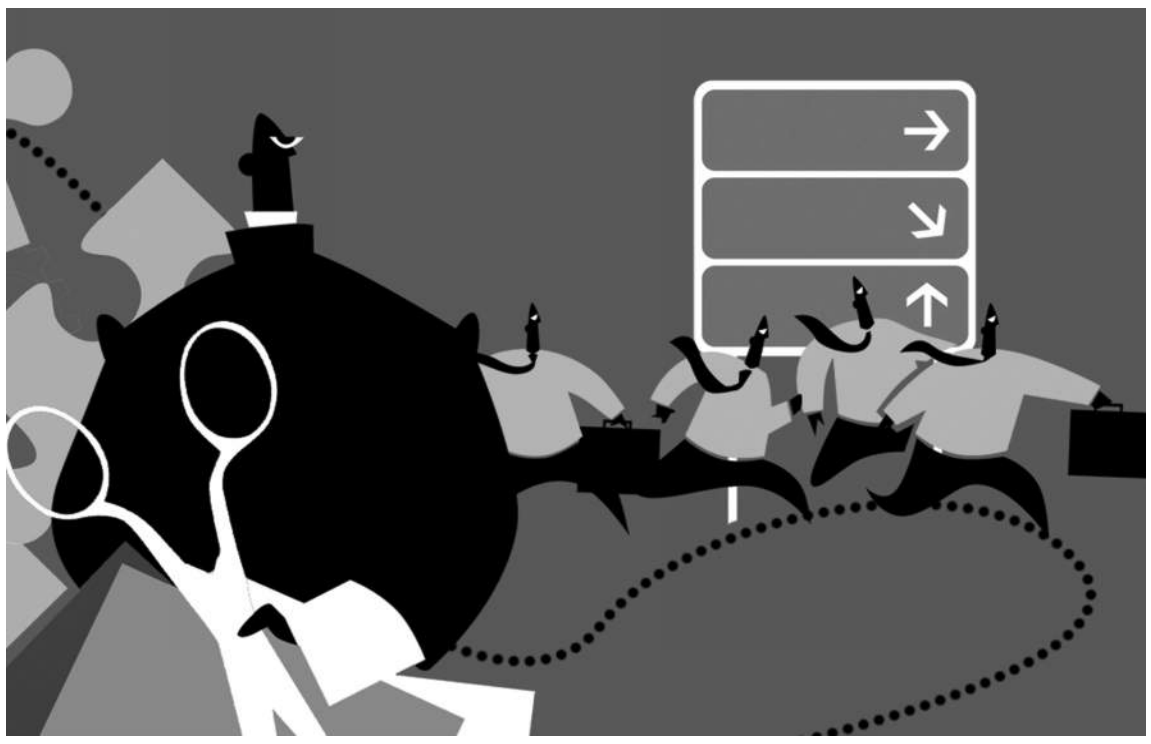

बिनय सिन्हा

कर शरणस्थली और संप्रभुता का अंतर्विरोध

कई संप्रभु देशों के कर शरणस्थली बन जाने से वैश्विक समाज के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों पर निगरानी मुश्किल हो जाती है। इसके पेचीदा पहलुओं से अवगत करा रहे हैं **पार्थसारथि शोम**

इस लेख में यह कहने की कोशिश की गई है कि कर संप्रभुता एवं कर पनाहगाह के बीच एक निर्णायक संबंध है। राष्ट्र-राज्य अपनी राजकोषीय नीति और खासकर कर संप्रभुता को सुरक्षित रखते हैं। कोई इसे वक्त की शुरुआत से ही जंग लड़ने के एक वित्तीय स्रोत के तौर पर देख सकता है। पिछली सहस्राब्दी में युद्ध के साथ कर का संबंध मध्य युग के यूरोप एवं एशिया और बाद में अमेरिका में असंदिग्ध था। जब संप्रभुता को सुरक्षित रखना होता था तो उसका साधन युद्ध ही होता था और युद्ध के लिए वित्त जुटाने का आसान तरीका करारोपण ही होता था। इसमें एक गड़बड़ यह थी कि युद्ध के लिए जिम्मेदार संप्रभु राज्य ही अपने नागरिकों की सुरक्षा करता था और उनके कल्याण के कार्य करता था।

पिछली सदी में कर मामलों में राष्ट्रों की संप्रभुता का सुव्यवस्थित ढांचा होने से देशों को यह लगा कि एक कारोबार को समान आय पर एक से अधिक देशों में कर देना पड़ता है। इस तरह दो देशों के बीच द्विपक्षीय दोहरा कराधान वंचना समझौतों (डीटीएए) का स्वरूप सामने आया जो दोनों देशों में कारोबार कर रहे करदाता पर सीमापार दोहरे कराधान को न्यूनतम करने का तरीका था।

हालांकि डीटीएए की राहें पूरी तरह साफ नहीं थीं। कुछ बहुराष्ट्रीय कंपनियों को विभिन्न डीटीएए के बीच यह तय करना पड़ता था कि एक देश में उनकी कंपनी अधिकतम कर लाभ कैसे उठा सकती है और इसका वहां पैदा होने वाले मूल्य सीमा से कोई नाता नहीं था। दूसरा, डीटीएए से देशों की निहित संबद्ध सौदेबाजी ताकत सामने आई। यह एक तरह से संप्रभु राष्ट्रों के बीच पहले से व्याप्त असमता को गहरा करता था। और तीसरा, अक्सर मौन समझ रखने वाले कुछ देशों ने अपनी कर दरों को इस स्तर तक कम कर दिया कि वे कर पनाहगाह कहे जाने लगे। यह व्यवस्था इन देशों को बहुराष्ट्रीय कंपनियों के लिए आकर्षक स्थान बना देती है, भले ही वहां पर प्रबंधन की गुणवत्ता सवालों के घेरे में हो।

वर्ष 2008-09 के वैश्विक आर्थिक संकट के बाद बहुराष्ट्रीय कंपनियों की कर वंचना को उन्नत एवं उदीयमान राष्ट्र-राज्यों पर भारी बोझ के तौर पर चिह्नित किया गया था। उस समय कर समझौतों में बहुपक्षीयता के प्रति दुनिया की रुचि अचानक ही बदल गई। उसी के बाद बेस इरोजन ऐंड प्रॉफिट शिफ्टिंग (बीईपीएस) परियोजना का जन्म हुआ जो जी-20 देशों की तरफ से प्रायोजित अवधारणा थी।

कुल मिलाकर, उन्नत अर्थव्यवस्थाओं ने कर पनाहगाहों के खात्मे के लिए कदम नहीं उठाए थे जिनका इस्तेमाल बहुराष्ट्रीय कंपनियां वैश्विक कराधान से बचने के लिए करती थीं। यह आचरण बताता है कि उनमें से कुछ कंपनियां किसी भी अंतरराष्ट्रीय कर के आसन्न बोझ से बचने का कोई रास्ता चाहती हैं। यह नहीं कह सकते हैं कि आर्थिक सहयोग एवं विकास संगठन (ओईसीडी) कर शरणगाहों के वजूद या हानिकारक प्रभावों को लेकर उदासीन बनी रही लेकिन उसने कर शरणगाहों की प्रबलता, नियंत्रण या निष्प्रभावी बनाने का कोई प्रत्यक्ष कदम नहीं उठाया। इसके बजाय ओईसीडी ने सीमापार निवेश पर दोहरे कराधान से संबंधित दंडात्मक उपायों पर जोर दिया और अपने 15 व्यापक बीईपीएस कदमों से बहुराष्ट्रीय कंपनियों की कर वंचना को विश्वास के साथ निपटाने की कोशिश की।

हालांकि यूरोपीय संघ ने 2016-19 में कर शरणस्थली के मसले से निपटने के प्रयास तेज कर दिए हैं। आचार संहिता जारी करने और उल्लंघनकर्ताओं को ब्लैक लिस्ट एवं ग्रे लिस्ट में डालने जैसे कदम यूरोपीय संघ ने उठाए। फिर भी, अचरज नहीं है कि कंपनियों के कदाचार पर नजर रखने वाले गैर-सरकारी संगठन ऑक्सफैम ने यह सवाल उठाया है कि कुछ देशों को काली सूची के बजाय ग्रे लिस्ट में क्यों रखा गया है और कुछ देशों को तो किसी भी सूची में नहीं रखा गया है? खैर, यह तो मानना होगा कि यूरोपीय संघ इस मसले को कम-से-कम तवज्जो तो दे रहा है।

ऑक्सफैम ने 18 देशों को चिह्नित किया है जो यूरोपीय संघ की काली सूची में रखे गए 23 बेहद चिंताजनक देशों से मेल खाते हैं। इस सूची में अमेरिकन समोआ, बहरीन, केप वर्डे, कुक आइलैंड, डोमिनिका, फिजी, ग्रेनेडा, गुआम, मार्शल आइलैंड, मोरक्को, नौरु, न्यू कैलेडोनिया, नियु, ओमान, पलाऊ, सेंट किट्स और नेविस, समोआ, त्रिनिडाड ऐंड टोबैगो, तुर्की, टर्क्स ऐंड कैकोस आइलैंड, संयुक्त अरब अमीरात (यूएई), यूएस वर्जिन आइलैंड्स, वनातु को रखा गया है।

इस सूची में छोटे द्वीपीय देशों की भारी मौजूदगी खुलकर नजर आती है। ये छोटे-छोटे देश मुश्किल से आत्म-निर्भर हैं और वे आर्थिक स्तर पर अपने पुराने औपनिवेशिक संपर्कों पर ही निर्भर बने हुए हैं। इसके बदले में वे पूर्व-औपनिवेशिक देशों में स्थित कंपनियों को अपने यहां कर संरक्षण की पेशकश करते हैं। यह सुविधाजनक व्यवस्था वेस्टफेलियन अवधारणा वाले संप्रभु राष्ट्र-राज्यों की कर संप्रभुता के खोल में बदस्तूर जारी है।

इसके साथ, पश्चिमी विद्वानों ने कर संप्रभुता में किसी भी तरह के ह्रास को लेकर सवाल उठाना जारी रखा है। मोटे तौर पर वे कर संप्रभुता के गुणों को एक रक्षणीय दर्शन और कर शरणस्थली को मुकाबला करने वाली परंपरा के तौर पर देखते हैं। पश्चिमी विद्वान इन दोनों संकल्पनाओं के बीच के निहित अंतर्विरोध को दरकिनार करते हुए दोनों को ही चाहते हुए दिखते हैं। कुछ लोगों ने ऐसी आशंका जताई है कि बहुपक्षीयता अपनी संप्रभुता के संरक्षण की जरूरत होने पर देशों से 'ना' कहने का अधिकार भी ले ली। वे इस बात पर बहुत जोर नहीं देते हैं कि आधुनिक वैश्विक समाज की जरूरतों के मुताबिक ढाले बगैर महज संप्रभुता पर ही जोर देने से विरोधाभास पैदा हुए हैं। डीटीएए समझौते, कर शरणगाहों की बढ़ती संख्या और वहां पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों की रणनीतिक मौजूदगी एक वैश्विक समाज की दिशा में बढ़ने की राह में बड़ी बाधाएं हैं।

ऐसा नहीं है कि अकादमिक जगत एवं विशेषज्ञों ने अंतर्निहित संघर्ष को रेखांकित किया है। विद्वान रोनेन पालन के शब्दों में, 'कर शरणगाहों को कानून बनाकर नहीं खत्म किया जा सकता है क्योंकि वे संप्रभुता के सिद्धांत की विकृतियां नहीं हैं जब तक वे मोबाइल कैपिटल के दौर में राष्ट्रीय संप्रभुता के परस्पर-विरोधी सिद्धांतों का प्रत्यक्ष परिणाम हैं। नतीजतन, कर शरणस्थली की अवधारणा पर चोट करने की कोई भी गंभीर कोशिश बहुआयामी स्तर पर करनी होगी और उसका संप्रभुता के आधुनिक सिद्धांत पर बड़ा असर होगा। कर शरणगाहों के खात्मे के लिए उद्योगीकृत देशों के बीच सहयोग एवं संप्रभु शक्तियों को थोड़ा सीमित करने की जरूरत पड़ेगी। ऐसा होने पर तथाकथित वेस्टफेलियन व्यवस्था का अंत हो जाएगा।' बहुपक्षीय संप्रभुता संयुग्मन को लेकर दूसरों की तरह लेखक के अंतिम मानक रुख के बारे में कोई भी निष्कर्ष निकालने से पहले स्याही सूख जाती है।

राजपक्षे बंधुओं के शासन में नए रिश्तों के आगाज का इंतजार

सियासी हलचल

आदिति फडणीस

श्रीलंका के नवनिर्वाचित राष्ट्रपति गोटाभाया राजपक्षे जब अपनी पहली विदेश यात्रा पर 29 नवंबर को नई दिल्ली पहुंचेंगे तो वह सरकार के आधे हिस्से का ही प्रतिनिधित्व कर रहे होंगे। बाकी आधा हिस्सा यानी नवनियुक्त प्रधानमंत्री महिंदा राजपक्षे तो उस समय कोलंबो में ही होंगे और दूरभाष पर चीन के संपर्क में होंगे। राजपक्षे भाइयों की यह जोड़ी इसके पहले 2005-15 के दौरान भी श्रीलंका की सत्ता में रह चुकी है। उस समय महिंदा राष्ट्रपति और उनके छोटे भाई गोटाभाया रक्षा सचिव थे। लगभग उसी समय इस क्षेत्र में भारत की भू-रणनीतिक भूमिका पर ग्रहण लगना शुरू हो गया था।

राजपक्षे बंधुओं की सत्ता के पहले काल में श्रीलंका के लिए सबसे बड़ी चुनौती देश के उत्तरी एवं पूर्वी इलाकों में तमिल विद्रोहियों पर काबू पाने की थी। दोनों भाइयों ने लिट्टे विद्रोहियों से निपटने के लिए हथियार खरीदने की कोशिश पहले भारत से ही की थी। लेकिन तमिलनाडु की राजनीतिक मजबूरियों के चलते भारत सरकार ने श्रीलंका के उस अनुरोध पर कोई निर्णय ही नहीं लिया। ऐसे में राजपक्षे को मजबूर होकर चीन और पाकिस्तान की तरफ मदद के हाथ बढ़ाने पड़े और वहां से उन्हें सहर्ष मदद मिली। युद्ध विराम एवं शांति स्थापना की कई नाकाम कोशिशों के बाद राजपक्षे बंधुओं ने यह तय किया कि सैन्य कार्रवाई से ही इस समस्या को हमेशा के लिए खत्म किया जा सकता है। इसके पहले श्रीलंका ने लिट्टे विद्रोहियों के खिलाफ सीमित सैन्य कार्रवाई ही की थी।

श्रीलंकाई नागरिकों के भारत के साथ संपर्क को लेकर काफी पुरानी यादें हैं। वर्ष 2000 में लिट्टे ने एलीफेंट दर्रे की लड़ाई के बाद जाफना में श्रीलंकाई सेना को घेर लिया था। तत्कालीन विदेश मंत्री लक्ष्मण कादिरगमार ने भारत से सैन्य मदद करने का आग्रह किया था, जैसा कि भारत ने 1971 के जनता विमुक्ति पेरामुना या 1987 के लिट्टे विरोधी अभियानों के दौरान किया था। लेकिन भारत ने ऐसा नहीं किया। अलबत्ता उसने श्रीलंका को 20 करोड़ डॉलर का अनुदान जरूर दिया था।

गोटाभाया के नेतृत्व और महिंदा के मार्गदर्शन में श्रीलंकाई सेना ने तमिल विद्रोहियों को करारी मात देकर लिट्टे के अपराजेय होने की धारणा ध्वस्त करने के साथ ही सबको अचंभे में डाल दिया था। इस युद्ध को भारत के प्रच्छन्न समर्थन का श्रेय भी राजपक्षे बंधुओं को दिया गया था जिन्होंने भारत को ठीक से 'संभाला' था। भारत की अधिक मदद के बगैर इस युद्ध में निर्णायक जीत से उत्साहित होकर उन्होंने चीन को अपने यहां विकास करने के लिए साहसिक न्योता दे दिया। महिंदा के निर्वाचन क्षेत्र हम्बनटोटा में महत्त्वाकांक्षी विकास कार्यों के लिए चीन को दिया गया निमंत्रण श्रीलंका को कर्ज के जाल में फंसाने का सबब बन गया। लेकिन उनकी सरकार बड़े गर्व से अपने नागरिकों को इस बात का संकेत दे रही थी कि दोनों भाइयों ने भारत को नीचा दिखा दिया है।

महिंदा के राष्ट्रपति रहते समय चीन हम्बनटोटा बंदरगाह एवं औद्योगिक क्षेत्र, कोलंबो बंदरगाह एवं फाइनैंस सिटी, शांग्रीला होटल्स एवं आवास, भंडारनायके अंतरराष्ट्रीय हवाईअड्डे से कोलंबो एवं गाले तक एक्सप्रेसवे और नए सैन्य मुख्यालय के निर्माण के अलावा सैन्य साजोसामान एवं प्रशिक्षण मुहैया कराने में लगा हुआ था। वहीं भारत इस समूचे परिदृश्य से नदारद था।

ऐसे में जब 2015 के चुनाव में महिंदा की शिकस्त हुई तो भारत ने एक हद तक सामरिक संतुलन हासिल कर लिया। उस समय राजपक्षे बंधुओं ने सार्वजनिक तौर पर कहा था कि भारत उनकी हार देखना चाहता था। उस समय तक राजपक्षे की फिजूलखर्ची के चलते श्रीलंका पर नौ अरब डॉलर का भारी कर्ज हो चुका था। राजपक्षे की हार के बाद सरकार बनाने के लिए वाम एवं दक्षिणपंथी दोनों दल एक साथ आए और एक अटपटा गठबंधन वजूद में आया। मैत्रीपाल सिरीसेना राष्ट्रपति बने जबकि रानिल विक्रमसिंघे प्रधानमंत्री बनाए गए। महिंदा राजपक्षे ने कुछ महीनों के भीतर ही जबरदस्त वापसी की और प्रांतीय चुनावों में सत्तारूढ़ गठजोड़ का सफाया कर दिया। भ्रष्टाचार एवं नकारेपन के आरोपों से घिरे गठजोड़ में अविश्वास बढ़ने लगा और राष्ट्रपति एवं प्रधानमंत्री दोनों ही एक-दूसरे के मुकाबले खड़े हो गए। इस लड़ाई का फायदा राजपक्षे बंधुओं को मिलता चला गया।

महिंदा और गोटाभाया को जल्द ही यह अहसास हो गया कि श्रीलंका में राष्ट्रीयता की भावना पर जोर देना उनकी जीत की राह प्रशस्त कर सकता है। बोदु बल सेना (बीबीएस) एवं सिंहल बौद्ध समुदाय को समर्थन देकर उन्होंने दक्षिणी हिस्से में अपनी स्थिति मजबूत करने में कामयाबी पाई लेकिन इससे पहले ही विभाजित समाज और भी खंडित नजर आने लगा। यह काफी रोचक है कि राष्ट्रपति चुने जाने के बाद गोटाभाया ने जो शुरुआती नियुक्तियां की हैं, वे प्रधानमंत्री पद पर अपने बड़े भाई और पसंदीदा रक्षा सचिव की हैं।

गोटाभाया की ड्रीम टीम कई लोगों की रात की नींद हराम कर सकती है। वर्ष 2014 में दिल्ली की यात्रा पर आए एक श्रीलंकाई विश्लेषक ने राजपक्षे खानदान का पूरा ब्योरा रखा था। उस समय राष्ट्रपति एवं रक्षा सचिव पदों के अलावा वाणिज्य मंत्री (छोटे भाई बासिल) और स्पीकर (भतीजा चमल) भी इस खानदान के ही थे। महिंदा के बेटे नमल को सत्ता का एक ध्रुव माना जाता था। खानदान के दो और लोग भी थे जो सत्ता प्रतिष्ठान में कहीं न कहीं शामिल थे।

आप यह दलील दे सकते हैं कि यह तो इतिहास की बात है। चीन की अब श्रीलंका में पहले जैसी रुचि नहीं रही और वह खुद अपनी समस्याओं में उलझा है। ऐसे में बढ़िया मौका देख भारत भी राजपक्षे बंधुओं को पुचकारने की कोशिश कर रहा है। राष्ट्रपति बनने के फौरन बाद गोटाभाया को दौरे का न्योता देना और गरमाहट दिखाना उसी योजना का हिस्सा है। आखिरकार, यह श्रीलंका के लोगों पर निर्भर है कि वे इस खानदान को ही सत्ता में बिठाना चाहेंगे या नहीं। भारत और श्रीलंका के कभी खत्म न होने वाले मनोरंजक एवं दिलचस्प सोप ओपेरा में हमें अगली कड़ी का इंतजार करना होगा।

कानाफूसी

संसद में वानर चर्चा

लोकसभा में गुरुवार को कई सांसदों ने बंदरों के आतंक की बात की। कुछ की शिकायत लुटियन जोन में सांसदों के बंगलों के आसपास सक्रिय बंदरों से थी तो अन्य धार्मिक स्थानों पर सक्रिय बंदरों से नाराज थे। शून्यकाल के दौरान मथुरा की सांसद हेमा मालिनी ने कहा कि उनके संसदीय क्षेत्र में, खासतौर पर वृंदावन में बंदरों के कारण हालात बेहद खराब हैं। उन्होंने कहा कि बंदरों को नपुंसक बनाने की कोशिशों के बाद वे और अधिक हिंसक हो गए हैं। सांसद ने सुझाव दिया कि वहां बंदर सफारी स्थापित की जानी चाहिए। उधर लोकजनशक्ति पार्टी के सांसद चिराग पासवान ने कहा कि लुटियन जोन में बंदरों का इतना आतंक है कि बच्चे बाहर खेल तक नहीं सकते। उन्होंने कहा कि यह इसलिए हुआ क्योंकि हम मनुष्यों ने बंदरों के प्राकृतिक आवास वनों में अपना ठिकाना बना लिया। यही कारण है कि वे हमारे घरों में घुस रहे हैं।

तृणमूल कांग्रेस के सांसद सुदीप बंद्योपाध्याय ने याद किया कि कैसे हरिद्वार की यात्रा में एक बंदर ने उनका चश्मा छीन लिया था और एक दुकानदार द्वारा बंदर को जूस दिए जाने पर ही उसने उनका चश्मा लौटाया।

आपका पक्ष

चुनावी चंदे की फांस में उलझे दल

राजनीतिक दलों के चंदे को लेकर शुरू से ही काफी खींचतान रही है। इस संबंध में विभिन्न राजनीतिक दलों द्वारा भ्रष्टाचार और कंपनियों के साथ सांठगांठ के आरोप-प्रत्यारोप भी लगाए जाते रहे हैं। इसी विवाद का समाधान तलाशने के लिए दिवंगत अरुण जेटली ने वित्त मंत्री रहते हुए अपने बजट भाषण में चुनावी बॉन्ड के प्रावधान की घोषणा की थी। अब विपक्षी दल इसे लेकर केंद्र की सत्ताधारी भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) पर हमला बोल रहे हैं। उनका कहना है कि भाजपा इसे अपने हित में भुना रही है और इसकी आड़ में भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रही है। वहीं, भाजपा का कहना है कि इसे लागू करने के बाद से चुनावी खर्च में पारदर्शिता आई है क्योंकि बॉन्ड के जरिये मिलने वाली राशि का स्रोत पता करना मुमकिन है। सरकार का तर्क है कि चूंकि इस पैसे पर कर भुगतान किया गया होता है, ऐसे में इसके

संसद भवन परिसर में चुनावी बॉन्ड के खिलाफ प्रदर्शन करते कांग्रेस के नेता। *फोटो : पीटीआई*

स्रोत का पता लगाना आसान रहता है। वैसे तो होना यह चाहिए कि प्रत्येक राजनीतिक दल अपनी वेबसाइट पर चंदे का विवरण अद्यतन करता रहे, लेकिन किन्हीं कारणों से राजनीतिक दल इसके लिए हिम्मत नहीं जुटा पाते हैं। ऐसे में राजनीति दलों की मंशा पर संशय पैदा होता है। विपक्षी दल या वे दल जिन्हें पर्याप्त चंदा नहीं मिल पाता, गाहे-बगाहे इसके खिलाफ आवाज उठाते रहते हैं, लेकिन सत्ता में आने के बाद सभी दलों का आचरण एक समान दिखने लगता है। उदाहरण के तौर पर आम आदमी पार्टी ने जोर-शोर से चुनावी चंदे में पारदर्शिता बरतने की बात की थी, लेकिन लंबे वक्त तक वह भी इसे अपनी कार्य प्रणाली का हिस्सा बनाकर नहीं रख पाई। पारदर्शिता के स्तर पर चुनावी बॉन्ड से कुछ उम्मीद बंधती है। हालांकि इसमें और अधिक सुधार की गुंजाइश से इनकार नहीं किया जा सकता है।

पवन यादव
लखनऊ, उत्तर प्रदेश

जलवायु परिवर्तन खतरे की घंटी

जलवायु परिवर्तन गंभीर चिंता का विषय बनता जा रहा है। आज प्रत्येक देश तीव्र औद्योगिक विकास में लीन है। जहां एक ओर वे प्रखर विकास कर विश्व पटल पर अपनी धाक जमाने की होड़ में तत्पर हैं, वहीं दूसरी ओर पर्यावरण के साथ उनका खिलवाड़ लगातार जारी है। जलवायु परिवर्तन इसी का नतीजा है जो वैश्विक स्तर पर खतरा बनता जा रहा है। कॉर्बन डाइऑक्साइड, नाइट्रस ऑक्साइड और मीथेन जैसी गैसें ग्रीनहाउस प्रभाव के लिए उत्तरदायी हैं। इससे वैश्विक तापमान में निरंतर वृद्धि होती जा रही है। इससे बाढ़, सूखा, वनाग्नि, बेमौसम बारिश, ऋतु चक्र परिवर्तन, अकाल जैसी आपदाएं बढ़ती जा रही हैं। ग्लेशियर लगातार पिघलते जा रहे है वहीं समुद्र का बढ़ता जल स्तर भी खतरे का सूचक है। श्वसन रोग तथा हृदय संबंधी नई बीमारियों के मामले भी लगातार बढ़ रहे हैं। जलवायु परिवर्तन का प्रभाव केवल मानव जाति पर ही नहीं बल्कि वन्य जीव जंतु व जंगली प्राणियों के लिए किसी अभिशाप से कम नहीं है। अब भी अगर हमारा जलवायु परिवर्तन जैसे मुद्दे पर ध्यान नहीं गया तो भावी वर्षों में इसके गंभीर परिणाम भुगतने पड़ेंगे।

श्रीनिवास पंवार बिश्नोई
दिल्ली

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।